वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २२ जून - २०२२ प्रकाशन - ०६

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

जून २०२२

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	07
2.	पू. गुरुजी का संदेश	08
3.	वेदान्त लेख	16
4.	लघु वाक्यवृत्ति	24
5.	गीता चिन्तन	30
6.	श्री लक्ष्मण चरित्र	42
7.	जीवन्मुक्त	48
8.	कथा	54
9.	मिशन-आश्रम समाचार	58
10.	आगामी कार्यक्रम	83
11.	इण्टरनेट समाचार	84
12	लिन्क	86

जून 2022

नानोपाधिवशादेव
जातिवर्णाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये
रसवर्णादिभेदवत्॥।

(आत्मबोध श्लोक : 11)

भिन्न-भिन्न उपाधियों के साथ सम्बन्ध के कारण जाति, वर्ण, आश्रम इत्यादि आत्मा पर आरोपित किये जाते है, जैसे जल में रस, रंग आकार आदि आरोपित किया जाता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

मनुष्य की उपाधि सर्वाधिक सुन्दर व अन्य समस्त प्राणियों से अत्यन्त विलक्षण है। उसके पास अत्यन्त विचारशील बुद्धि एवं भावनात्मक मन है। ये ऐसे करण है जिससे वो अपनी पूर्णस्वरूपता में जगकर स्वयं भगवत्स्वरूप हो सकता है, कालातीत अवस्था में जग सकता है, जन्मादि से परे जा सकता है। ऐसे महान लक्ष्य की सिद्धि हेतु तैयारी भी कुछ विशिष्ट ही करनी होती है। अपने शरीर, मन एवं बुद्धि के सम्पूर्ण विकास के लिए शास्त्र उसे कर्म, उपासना और तत्व-ज्ञान रूपी साधन बताते है। शास्त्रोक्त ढंग से जब कर्म, उपासना और तत्व-ज्ञान प्राप्त किए जाते है, तब उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो जाता है। सात्विक कर्म और उपासना उसे तत्व-ज्ञान के लिए तैयार कर देते है। इसलिए जीवन में कर्म और उपासना का अत्यंत महत्व-पूर्ण स्थान होता है।

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

कर्म मनुष्य को सजग और शुद्ध बनाता है, और उपासना उदात्त आशय के प्रति प्रेरणा से युक्त करती है। कर्म का अर्थ है–संकल्पपूर्वक सजग चेष्टा, न कि मात्र यंत्रवत् भान–रहित, रागद्वेष वा संस्कारों के वशीभूत की गई क्रिया। सजगता का ही दूसरा नाम कर्म है। अतः कर्म से मनुष्य को वर्तमान में उपलब्ध रहने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। कालातीत अवस्था का द्वार वर्तमान से ही हो कर गुजरता है, अतः मुमुक्षु के लिए भी कर्म अपरिहार्य

'कर्म का अर्थ संकल्पपूर्वक, सजग चेष्टा है।'

हो जाता है। गीता में भी भगवान कहते हैं कि, 'न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषः अश्नुते।' कर्म को आरम्भ किए बगैर नैष्कर्म्यरूप मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती है। जो कर्म का सात्विक तरीके से आश्रय लेते हैं वे स्वावलम्बी, उदात्त, निरभिमानी, निर्मल एवं प्रेमभाव से युक्त हो जाते है। उनका जीवन सब के लिए कल्याणकर होता है, और उनकी

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

अध्यात्मयात्रा का मार्ग प्रशस्त होता है, जो उसे मुक्ति की ओर ले जाता है। उन्हें कर्म में इसी समय स्वतंत्रता व मुक्ति का अनुभव होने लगता है।

'कर्म और उपासना एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए दोनों का समुच्चय होना चाहिए।'

दूसरी महत्वपूर्ण साधना होती है 'उपासना'। उपासना परमात्मा का कोई हृदयस्पर्शी ग्राह्य रूप लेकर रोमांच की अवधि तक अत्यंत भावपूर्वक स्मरण करते हुए उसमें तल्लीन होने को कहते हैं। उपासना का आलम्बन हमारे आदर्श एवं प्रेरक की प्रतिमूर्ति होती है, उसके स्मरण मात्र से मन में कुछ-कुछ होता है। उदात्त एवं सकारात्मक लक्ष्य से प्रेरित होने से अपनी उर्जा को उचित दिशा प्राप्त होती है। परमात्मा के स्वरूप, गुण एवं विभूतिओं के चिंतन से इन सबका अपने मन में समावेश सहजरूप से हो जाता है, और उसका रसास्वादन करते हुए उपासक उसमें तल्लीन हो जाता है। इससे मन एकाग्र, संवेदनशील एवं सूक्ष्म अनुभूति की प्राप्ति हेतु सक्षम हो जाता है। उपासना मूलरूप से एक मानसिक कर्म है, अतः इसका समुच्चय

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

कर्म से साथ अच्छी तरह से हो जाता है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। जो भी इन दोनों का समावेश अपनी दिनचर्या में करता है, उसे इन दोनों का विशेष लाभ प्राप्त होता है।

जो कर्म या उपासना में से किसी एक का ही आश्रय लेता है, उसकी श्रुति स्पष्ट शब्दों में निंदा करती है। जो सिर्फ कर्म को महत्व देता है और उपासना नहीं करता है, उसमें अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठा दृढ नहीं रहती है, वह अन्य लक्ष्यों से प्रभावित होता रहता है। उसमें अपने मन को शान्त करने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं होता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा की दृढता नहीं हो पाती है। अतः कर्म, उसमें प्राप्त सफलता का अभिमान अपने उपर आरोपित करके अपने आपको ही सब का कर्ता-धर्ता मानने लगता है। अभिमान से युक्त व्यक्तित्व का जीवन सदैव बोझों से युक्त रहता है।

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

दूसरी ओर जो मनुष्य सिर्फ उपासना का आश्रय लेता है, उसका जीवन निक्रिय, अव्यवहारिक एवं कल्पना के जगत् में ज्यादा दीखाई पडता है। उसे व्यवहार करने से और लोगों से उच्चाटन होता है। अतः उससे पलायन करना चाहता है। उस वजह से आसक्ति, अपेक्षाएं, राग एवं द्वेष आदि से रहित होकर मन को हल्का नहीं कर पाता है। न ही कर्म से होनेवाली मन की शुद्धिरूप महान उपलब्धि को वो प्राप्त कर पाता है। वे केवल आदर्श के खयालों में ही रहते है। वह सब से वियुक्त होकर जीता है।

'मृत्यु दो प्रकार की होती है -
१. प्रारब्धसमाप्ति २. स्वभाव के वशीभूत जीना।'

अतः उपासना एवं कर्म का समानरूप से साथ साथ जीवन में स्थान होना चाहिए। श्रुति दोनों के समुच्चय का फल बताती हैं कि - दोनों का साथ-साथ अनुष्ठान करनेवाला कर्म से 'मृत्यु' को पार करके उपासना से अमृत की प्राप्ति कर लेता है। भगवान शंकराचार्यजी अपने भाष्य में दो प्रकार की मृत्यु बताते है। एक प्रारब्ध की समाप्ति पर शरीर का पतन, तथा दूसरी संस्कार व

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

रागद्वेष के वशीभूत होकर कार्य करना भी मृत्यु है। क्योंकि संस्कार में हम ड्राइवर की सीट पर नहीं होते है, संस्कार से जीवन को एक गति मिली है, उसके अनुरूप चलता है। रागादि में कर्मफल ही हमें कुछ करने के लिए प्रेरित करते है, और हम बहते जाते है। वहां विवेकपूर्वक जीने की स्वतंत्रता नहीं होती है। यही मनुष्य की मनुष्यता के अभाव का सूचक है। अतः संस्कार और रागादि से वशीभूत होनेवाली प्रवृत्तियाँ मृत्युतुल्य है। इस प्रवृत्ति में भविष्य की विशेष उपलब्धि के प्रति दीनता का अस्तित्व है। जो हमें सदैव अपूर्णता से युक्त बनाए रखता है।

उपासना से किसी महान के अस्तित्व के भाव और श्रद्धा की वजह से हमें अपने अधिकार के क्षेत्र का पता लगता है। परमात्मा का स्मरण हमें कर्मफल के प्रति निश्चिंत बनाता है जिससे अमृततुल्य हल्कापन एवं प्रसन्नता का अनुभव होता है। अतः मनुष्य को उपासना का भी रहस्य जान कर इसे अपने जीवन में अवश्य जोडना चाहिए। इस प्रकार कर्म और उपासना दोनों का

मन का सम्पूर्ण विकास कैसे?

सह अनुष्ठान हमें वर्तमान में उपलब्ध, शान्त, प्रसन्न एवं महान लक्ष्य के अस्तित्व के प्रति जाग्रत करता है। जिसमें यह सामर्थ्य होता है, वही आत्मज्ञान प्राप्त करने तथा ज्ञान में निष्ठा उत्पन्न करने का पात्र बनता है। अन्ततः अपने व्यक्तित्व के उपर विचार करके सत्यता का ज्ञान प्राप्त करने के द्वारा समस्त व्यक्तित्व की सीमाओं से परे जाया जाता है।

ओम् तत्सत्।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। मुण्डक उपनिषद् बताता है कि जिस समय कोई मनुष्य कर्म-जनित उपलब्धियों की परिच्छिन्नता देखकर उनसे वैराग्य को प्राप्त हो जाता है, तब उसे विनम्रता के साथ किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा के पास जाकर ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हेतु निवेदन करना चाहिए।

मनुष्य स्वरूपतः ही पूर्ण है। उनमें किसी भी प्रकार की परिच्छिन्नता का लेश-मात्र भी नहीं है। वो साक्षात् ब्रह्म है। किन्तु अपनी वास्तविकता के अज्ञान की वजह से अनेको भ्रान्तियों से युक्त है, जिससे कि स्वयं को अपूर्ण, संसारी एवं दुःखी मानने लगता है। तथा ईश्वर को अपने से भिन्न मानने लगता है, और जगत् को अपने सुख-दुःख का कारण मान लेता है। इस अज्ञान को दूर करके आत्मा का यथार्थ ज्ञान कराने वाले गुरु ही होते है।

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

गुरु के कार्य को एक शिल्पकार के कार्य के साथ तुलना की जा सकती है। अच्छा शिल्पी उबड-खाबड, आकारविहीन पत्थर में एक सुंदर मूर्ति को निहित देखता है, जो एक साधारण व्यक्ति को नही दिखाई पडती है। ऐसी अव्यक्त मूर्ति को वह शिल्पी उद्घाटित, अनावृत कर देता है। उसमें कुछ और नहीं जोडता। पत्थर के उस अनावश्यक भाग को दूर मात्र करता है, और इस तरह से दिव्य मूर्ति का आविर्भाव करता है। गुरु भी शिल्पकार की तरह से अपने पास आए शिष्य में से अज्ञान एवं मोहादि अनावश्यक अध्यस्त परतों को केवल निकालकर शिष्य की ब्रह्मस्वरूपता को मानो आविर्भूत कर देते हैं। श्रुति, युक्ति और अनुभूति के आधार पर उपदेश करके शिष्य की समस्त अज्ञानवशात् उत्पन्न की हुई समस्त धारणाओं को दूर करते हैं।

'गुरु एक शिल्पकार है, जो शिष्यमें से विकारादि दूर करके सुन्दर प्रतिमाको उभारते हैं।

जिस समय गुरु उपदेश से समस्त अध्यारोपों का अपवाद करते हुए सत्य का उद्घाटन होता है तो मानो शिष्य का नया जन्म हो जाता है। वहां जीवत्व की समस्त मलिनताओ और बन्धनों से मुक्ति होकर पूर्णता का प्रागट्य हो जाता है, अर्थात् परमात्मस्वरूप अनावृत्त हो जाता है।

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

परमात्मा का ज्ञान स्वयं परमात्मा ही दे सकते हैं। यह कार्य जीव स्वतः नहीं कर सकता है। परमात्मा अनुपम एवं अकल्पनीय है। यद्यपि समस्त उपलब्ध साधनरूप शब्दादि सीमित है, तथापि हमारे पास इन साधनों के प्रयोग के अलावा और कोई विकल्प नही है। गुरु शास्त्रों के शब्दों का अत्यंत सुन्दरता से प्रयोग कर हमें शब्दातीत तत्व दिखा भी देते हैं। किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान तब ही प्राप्त होता है जब उसके बारे में कल्पनाएं समाप्त हो जाती है। अपना ज्ञान भी तब ही प्राप्त होता है जब अपने बारे में कल्पनाएं एवं अभिमान समाप्त हो जाते है। गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करने से अभिमानादि स्वतः समाप्त हो जाते है, अतः हमें किसी ज्ञानवान के पास जाकर उनके प्रति समर्पित होकर ज्ञान की प्राप्ति का द्वार खोल देना चाहिए। उनके प्रति समर्पण से ही हमारे जीवभाव के बाधित होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही तत्त्व-ज्ञान दे कर हमें हमारी ब्रह्म स्वरूपता में जगा सकते हैं। जिन्होने श्रुति और आचार्य की परंपरा से इस ज्ञान को प्राप्त करके श्रुति के अर्थ को देख लिया हैं, और स्वयं इस अर्थ को जीते हुए उस अवस्थामें रम रहे हैं, वे ही शिष्य को

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

उस परं तक जगा देते हैं। गुरु साक्षात् परब्रह्म तत्त्व ही है, लेकिन वह ब्रह्म जिसने हमारे अज्ञान के नाश हेतु विशेष उपाधि धारण करी हो तथा जो हमारे धरातल पर आकर हमारा हाथ पकडते हुए उंचाई तक ले जाते हैं। गुरु के प्रति भक्ति ही श्रुति के अर्थों को खोलने की चाबी है। इसलिए गुरुसेवा का अत्यंत महत्व है।

'सेवा ऐसा माध्यम है कि जिससे अपने मन की समस्त भावनाओं को मूर्तरूप देकर अपनी भक्ति को ओर बढ़ा पाते हैं।'

जहां प्रेम से युक्त होकर श्रीगुरुचरणों की सेवा होती है, वहां पर ही गुरु-शिष्य के मन के तार जुड जाते है। सेवा एक ऐसा माध्यम है; जिससे हम अपने मन की समस्त भावनाओं को मूर्तरूप देकर अपनी भक्ति को ओर बढा पाते है। गुरु की सन्निधि के कारण अनेकों प्रेरणास्पद बातें सीखने को मिलती है। इतना ही नहीं, किन्तु सेवा के समय हमारे मन में छिपे रागादि विकारों को प्रगट होने का मौका मिलता है, एवं गुरु के सामने हमारी यथास्थिति का प्रागट्य हो जाता है। शिष्य के खुलेपन तथा उनके प्रति आत्मीयता के कारण एक संवाद आरम्भ होता है।

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

जब समस्या केवल अज्ञान की हो तब ज्ञान एवं ज्ञानप्रदाता को विशिष्ट स्थान दिया जाना स्वाभाविक है। गुरु की महिमा तो ईश्वर से भी अधिक है, क्योंकि ईश्वर अज्ञान के विरोधी नहीं है, लेकिन गुरु अज्ञान के निवर्तक हैं।

गुकारस्तु अन्द्धकारः रुकारस्तन्निवर्तकः।
अन्धकार निवर्तकत्वात् गुरुरित्यभिधीयते।।

गुरुगीता में महादेवजी पार्वतीजी को उपदेश देते हुए गुरु शब्द का अर्थ कहते हैं, कि गुरु शब्द में गुकार का अर्थ अज्ञान रूपी अन्धकार है, तथा रुकार अन्धकार को निवृत्त करने वाला तेज स्वरूप ज्ञान हैं। शिष्य के हृदय में से जो अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करते हैं – वो ही गुरु कहलाते हैं।

'सद्गुरु की तुलना करी जाए ऐसा दृष्टान्त तीनों लोक में कहीं पर भी प्राप्त नहीं होता है । क्या गुरु को पारसमणि की उपमा दी जाएं? पारस लोहे को सोना ही बनाता है किन्तु पारस नहीं बनाता। जब कि सद्गुरु अपने चरणों में आश्रित शिष्य को अपने ही समान बना देते हैं। अतः वे उपमारहित अलौकिक ही हैं।' यदि परमेश्वर तुल्य कहे तो भी ईश्वर हमें सिर्फ

तद्विज्ञानार्थं गुरुम्.....

मोक्षसाधनों की अनुकुलता प्रदान करते है, हमारे कर्म के फल प्रदान करते है किन्तु हमें वे स्वतः मुक्त नहीं करते हैं। ईश्वर जब किसी जीव पर विशेष करुणा करते हैं तो उसके सामने सद्गुरु की तरह प्रकट हो जाते है, अतः गुरु का स्थान तो इस जगत् में समस्त सम्बन्धों से सबसे विलक्षण है। गुरुमहिमा निश्चितरूप से अपरंपार है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

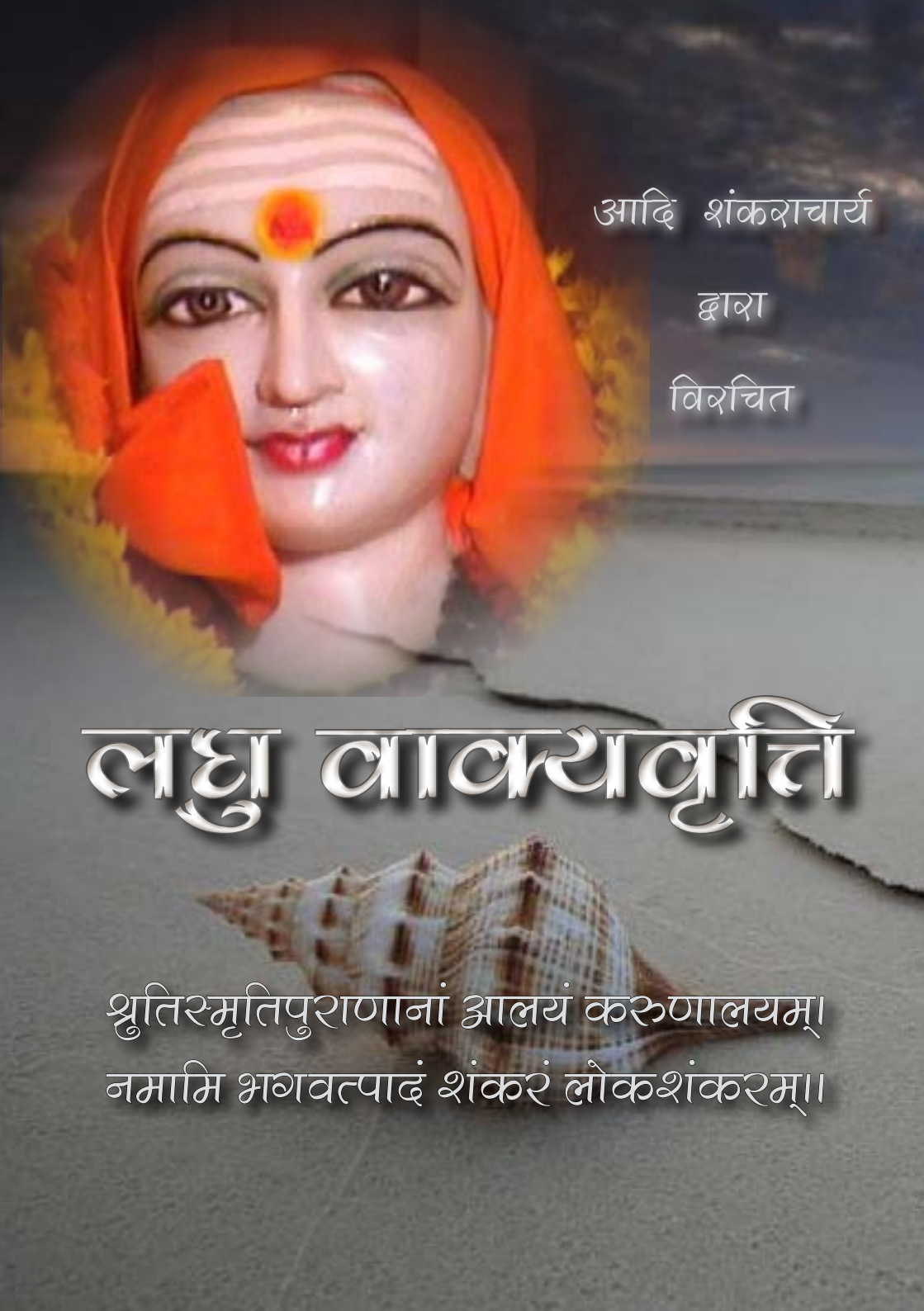

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

— श्लोक : ६ —

वह्निन्तप्तजलं ताप
युक्तं देहस्य तापकम् ।
चिद्भास्या धीस्तदाभास
युक्तान्यं भासयेत् तथा ॥

जैसे अग्नि के संयोग से गरम हुआ जल शरीर को जलाने में सक्षम हो जाता है, वैसे ही चेतन तत्व से प्रकाशित हुई बुद्धि भी सब वृत्तियों को प्रकाशित करने में सक्षम हो जाती है।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि जाग्रत में बुद्धि को यह चेतनता प्रकाशित करती है, चिदाभास के समस्त व्यापार शुद्ध चेतना के द्वारा प्रकाशित होते हैं। यह प्रश्न होता है कि शरीर, इन्द्रियां आदि तो जड़, पंचमहाभूत की बनी हुई है, उसमें जीवन्तता, चेतनता का अनुभव कैसे होता है और वह जड़ होते हुए भी अन्य विषयों को प्रकाशित करने में कैसे समर्थ होते है। उसका समाधान इस श्लोक में आचार्य कर रहे हैं।

'जाग्रत अवस्था के अन्तर्गत के समस्त खेल बोधाभास के ही है।'

आचार्य एक दृष्टान्त के माध्यम से समझाते हैं। एक बर्तन में पानी को रखा है, पानी स्वतः शीतल, ठण्डा है, जिस बर्तन में रखा

लघु वाक्यवृत्ति

है, वह बर्तन भी ठण्डा है। उसमें हाथ डालने पर वह जला नहीं सकता है। किन्तु उस पात्र को जब किसी प्रज्ज्वलित अग्नि पर (चूल्हे) पर रखते हैं, तो सर्व प्रथम अग्नि की सन्निधि से शनैः शनैः वह पात्र गरम होता है। जैसे जैसे पात्र गरम होता है, वैसे वैसे पात्र की सन्निधि से पानी भी गरम होने लगता है। यह पानी शीतल होते हुए भी उसमें गरमी व्याप्त हो जाती है, और वह शरीर को जलाने में भी सक्षम हो जाता है।

वैसे ही चेतना की सन्निधि में आते ही बुद्धि भी अग्नि की सन्निधि में पात्र की तरह जीवन्त, चेतनवान हो उठती है। बुद्धि में आभासित चेतना मै वृत्ति की तरह भान होने लगती है। यह मैं वृत्ति जीवन्त, चेतनवान हो उठती है। मैं की सन्निधि में आगे क्रमशः अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रियां तथा शरीर जीवन्त हो उठता है।

लघु वाक्यवृत्ति

यद्यपि प्राण जड़ है, तो भी वे क्रियाशील हो उठते है, उससे शरीर के द्वारा विविध क्रियाकलाप होने लगते है। इन्द्रियां स्वयं जड़ है, फिर भी अपने अपने शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने लगती है। शरीर भी जड़ है किन्तु वह भी व्यवहार योग्य बन जाता है।

न इन्द्रियों में अपना प्रकाश होता है और न ही प्राण में स्वतः क्रियाशक्ति है, और न ही स्थूलशरीर में जीवन्तता है। किन्तु सब बुद्धि में अभिव्यक्त चेतना के द्वारा जीवन्त होकर जगत में व्यवहार योग्य बन जाते है। जब कि सत्य तो यह है कि यह सब अन्तःकरण से लेकर स्थूलशरीर तक की उपाधि पंचमहाभूत की बनी हुई, जड़ है। ठीक वैसे ही कि जैसे शीतल जल भी अग्नि से गरम हुए पात्र की सन्निधि से जलाने में सक्षम हो उठता है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 16

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

गीता के १६ वें अध्याय का नाम दैवासुर सम्पद् विभागयोग है। इस अध्याय में २४ श्लोक है। अध्याय के नाम से ही इसका विषय स्पष्ट है कि इस अध्याय में दैवी और आसुरी गुणों की चर्चा की है। अपने अन्तःकरण के विविध गुणों का संज्ञान होना चाहिए। क्योंकि यह बन्धन और मुक्ति का हेतु बनता है।

मूल्यों के बारे में अनेकों को ज्ञान नहीं होने से अज्ञानवश आसुरी को स्वेच्छा से धारण करके, उसमें स्वस्थता समझते है। हम अपने रथ के स्वामी बनकर रथ संचालित करे, उसके लिए बुद्धि को ही सारथि बनना है। बुद्धि जो उचित समझती है, उस दिशा में रथ को ले जाती है। अज्ञानवश गलत मूल्यों को स्थापित करने

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

पर जीवन की यात्रा गलत दिशा में होती है। एक समय हम रथ चलाने में स्वतंत्र होते है, किन्तु उसके उपरान्त गलत मूल्यों की वजह से स्वतंत्रता खो बैठते है और विवश होकर प्रवाहित होते रहते है। और वही पतन का मार्ग होता है। हम जिसे उचित समझे, उसे करने की स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए। स्वतंत्रता जिम्मेदारी से आती है। अतः विवेकी होने की प्राथमिकता होनी चाहिए। शिक्षा का प्रयोजन बुद्धि को जगाना है। हमारी समस्त प्रवृत्ति और निवृत्ति, जिसे मूल्यवान समझते है, उसके अनुरूप ही होती है। आज संस्कार और बुद्धि के निश्चयवशात् क्या मूल्यवान है, यह विचार करना चाहिए।

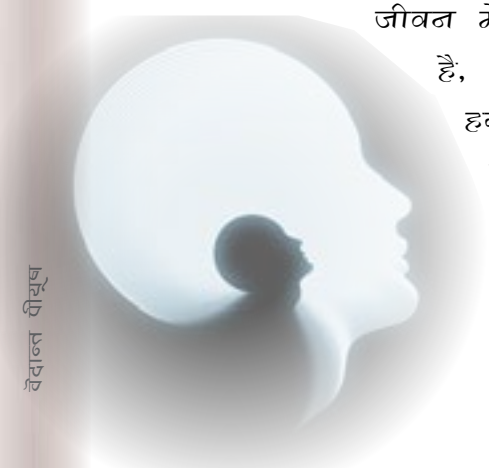

जीवन में जिसका मूल्य स्थापित होता है, उसी दिशा में प्रवृत्ति होती है। हर व्यक्ति संस्कार के आधीन होकर जीता है, उसके अनुरूप, वशीभूत प्रवृत्ति होती

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

है। संस्कारों के वशीभूत जीने में विवेक व स्वतंत्रता नहीं होते है; किन्तु बेबसी है। इसलिए एक समय ऐसा आना चाहिए कि हम संस्कार से प्राप्त मूल्यों के प्रति कानिशयस हो सके। अन्तर्मुख होकर अपने मूल्यों व अन्त:प्रेरणा को जानना चाहिए।

'संस्कार के वशीभूत होकर जीना अविवेक और पराधीनता का सूचक है।'

मनुष्य पाप-पुण्य का मिश्रण है। अत: उनमें दैवी-आसुरी दोनों प्रकार के मूल्य होते है। मनुष्यजीवन मानों कुरुक्षेत्र है। अत: उनमें सुमति-कुमति, पाण्डव-कौरव दोनों का वास है। इन दोनों सम्भावना में से हम किसका आश्रय लें, उसमें हमारी बुद्धिमत्ता और विवेक है। विवेक करके स्वस्थता के पक्ष का आश्रय लें उसके लिए बुद्धिमत्ता चाहिए। समस्त धर्म शास्त्र का प्रयोजन हमारे अन्दर दैवीमूल्यों को जगाना और विकसित करना है। उसे जगाकर स्वतंत्रता से उस पर विवेकपूर्वक यात्रा होनी

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

चाहिए; न कि संस्कारों के अधीन होकर जीएं। भगवान इस अध्याय में दैवी और आसुरी मूल्य प्रदान करके, दैवीमूल्य की स्तुति करके उसके लिए मानों प्रेरणा दे रहे हैं। सत्संग का प्रभाव अपनी प्रेरणा व गुणों में परिवर्तन हो जाएं।

दैवीगुणों के समावेश से दीनता के जीवन से मुक्त होकर, बडप्पन का समावेश होने लगता है। संकुचिता और खण्डित मनोवृत्ति से मुक्त होते जाते है। मन में उदारता, निष्कामता, निःस्वार्थता, संवेदना, बुद्धिमता का समावेश होकर मन सात्विक होता जाता है। गहराई से, सूक्ष्मता से विचार करने में समर्थ बनते है। सतत अन्तर्मुखता की यात्रा होती है। उससे पूर्णता, मुक्ति व अध्यात्म की दिशा मे यात्रा का मार्ग प्रशस्त होता जाता है। उसके विपरीत आसुरी जीवन संकुचित, दीन, बहिर्मुख बनाता

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

है। अन्ततः स्वयं को यात्रा में अकेला पाते है। सतत चिन्ता, विक्षेप, अभिमान से ग्रस्त, पराधीनता व दीनता का जीवन जीते है। और सतत नरक व पतन की दिशा में यात्रा करते जाते है।

'दैवीमूल्यों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है, आसुरी मूल्य पतन की ओर ले जाते हैं।'

भगवान यहां दैवी मूल्यों के अन्तर्गत सर्व प्रथम मूल्य बताते हैं - अभयम्। अभय अर्थात् किसीसे भी भय नहीं होना। भय का कारण पराधीनता और अपूर्णता होता है। छोटेपन से युक्त होने के उपरान्त ही गलतकार्य और पाप होते है। उससे भय होता है। भय स्वयं को ही अच्छा न लगे; तब ही गलतकार्य नहीं होगा। जब अभिमान से ग्रस्त, खुद को ही सर्वे-सर्वा मानकर स्वकेन्द्रित होकर जीते है, तो सब बोजा हमारे ही कन्धों पर आ जाता है, वह भी भय का हेतु बनता है। भय के निमित्त, उसका

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

हेतु और उसके दोष की गहराई में जाकर विचार करने पर ही वह दूर होकर अभयत्व होने लगता है। अन्ततः आत्मज्ञान प्राप्त करके अपने आपको ब्रह्मस्वरूप जानकर, द्वैत से परे जाना ही भय से पूर्णतः व शाश्वतरूप से मुक्ति है। किन्तु भय से मुक्ति का आरम्भ ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर धर्माचरण के समावेश से होता है।

भगवान दूसरा मूल्य बताते हैं – सत्वसंशुद्धिः अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि। जीवन में बाह्य और अन्तःशुद्धि का महत्व स्थापित होना चाहिए। शुद्धि का आशीर्वाद तब ही प्राप्त होता है कि जब मन शुद्ध होता है। साधारणतः हमें जो अच्छा लगे, जिसे मूल्यवान समझते हैं – वही हम करते है। अतः शुद्धि हमें प्रिय लगे। जिसके मन में शुद्धि है वह अपने मन को सुन्दर पवित्र बनाए रखना चाहता है। मन स्वकेन्द्रिता और रागादि से मुक्त होता है।

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

ज्ञानयोग व्यवस्थिति: – अच्छे ज्ञान का मूल्य होना। हर जगह अच्छाई देखने का सामर्थ्य रखें। जहां से भी अच्छा और प्रामाणिक ज्ञान मिले – उसका महत्व स्थापित होना चाहिए। ज्ञान को आत्मसात करना, समाहित करना ही योग है। जिसमें यह प्रेरणा है, उसे ज्ञानयोगव्यवस्थिति की संज्ञा दी गई।

'स्व'केन्द्रिता और राग-द्वेष की मलिनता से मुक्त, जगा हुआ, विचारशील मन ही सत्वसंशुद्धि का लक्षण है।'

दान – जो भी मेहनत से अर्जित करते है, उसे आवश्यकमंद के प्रति देना चाहिए। जो भी वस्तु अपनी है, उसमें आसक्ति व अभिमान होना आसुरीगुण का लक्षण है। यह पतन का कारण है। दान देनेवाले में सब के प्रति अपननापन की भावना है। उनके मैं का सतत विस्तार होकर उदारता, संकुचिता से मुक्ति होती जाती है। जिनके अपनापन सब के प्रति नहीं होता है, उनमें कभी भी आत्मीयता अर्थात् ज्ञान

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

के प्रतिफल स्वरूप सर्वात्मभाव की सम्भावना नहीं होती है। सबको अपना जानते हुए, उनकी आत्मीयता से सेवा करने की प्रेरणा ही दान रूपी मूल्य के द्वारा दी जाती है।

दम अर्थात् इन्द्रिय के स्वामी बनकर जीना, निस्वार्थता का समावेश, नियमित अध्ययन, तपस्या अर्थात् प्रतिकुलता में भी प्रसन्न रहने का सामर्थ जगाना, मन में सरलता होना आदि मूल्य बताएं। मन में हिंसा अर्थात् स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी को भी पीडा प्रदान न करे, ऐसी संवेदनायुक्त होना, जीवन में सत्य का महत्व होना कि व्यक्तित्व के प्रत्येक धरातल में समन्वय हो। क्रोध के वशीभूत होकर न जीएं, जीवन में त्याग का, मन पर प्रभुत्व हो तथा इर्ष्या आदि दोषों का अभाव होना बताया। सब के प्रति दया, करुणा की भावना, विषयों के प्रति लोलुपता का अभाव हो, संवेदनशीलता हो, गलत व पाप

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

का आचरण करने में संकोच का अनुभव होना चाहिए। धर्ममय जीवन की तेजस्विता हो, अन्य के प्रति क्षमा की भावना हो, अभिमान से रहित होना यह सब दैवीमूल्य कहे गए है।

'काम, क्रोध और लोभ – यह तीन नरक के द्वाररूप है, अतः उसे त्यागना चाहिए।'

जब किसी महान लक्ष्य को रखते है, तो उसमें अनेकों बाधाओं की सम्भावना भी होगी। उसे क्रोध से वा संवेदनाविहीन होकर निपटना अज्ञानी का तरीका है। क्रोध असमर्थता व बेचैनी को दर्शाता है। त्याग– संन्यस्तता दर्शाता है, जहां लक्ष्य पराधीनता का नहीं, किन्तु अपने अन्दर संतुष्टि का हो। अपैशुनम्– किसीके दोषों की चर्चा नहीं करना। दोषचर्चा बहिर्मुखता का लक्षण और अहं की संतुष्टि का पर्याय है।

जिसमें यह सब मूल्य समाविष्ट होते है, वही ज्ञान प्राप्त करके उसे हृदयान्वित करने में समर्थ होता है। अतः कहा कि दैवीसम्पद् विमोक्षाय..... मुक्ति के लिए जीव को दैविक

दैवासुर सम्पद् विभाग योग

अर्थात् दैवीसम्पत्ति का धनी बनना होगा। अपने अन्दर के दोष के प्रति कान्शियस हो सके। पहले दोष के कान्शियस होना चाहिए। उसके उपरान्त उसके दोष और तद्विपरीत का मूल्य स्थापित होकर कान्शीयसली उसे दूर करना चाहिए। अपने अन्दर के दोषों से चिन्तित नहीं होते हुए, स्वयं अपने द्रष्टा होकर तटस्थता से, उसमें दोषदर्शन होने पर प्रेरणा आदि परिवर्तित होकर दैवी मूल्य का मूल्य स्थापित होता है और विपरीत मूल्यों की निवृत्ति होकर दैवी मूल्यों का समावेश हो पाता है। भगवान ने आसुरी मूल्यों का भी विस्तार से वर्णन किया, जिससे कि हम उसे अपने अन्दर देखकर दूर करने को प्रेरित हो।

जीवन में क्या करनेयोग्य और क्या त्याज्य है, उसका विवेक शास्त्र से प्राप्त करते है। शास्त्र का कार्य प्रसन्न, सुखी मुक्त करना है। अतः भगवान ने कहा कि तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं कार्याकार्यव्यवस्थितौ। इसके साथ ही यह अध्याय समाप्त हुआ।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— १९ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

श्रीराम के साथ वनवास में लक्ष्मणजी को सेवा के द्वारा ही तृप्ति और शक्ति की उपलब्धि होती है। चित्रकूट पहुंचकर निवास के लिए उपयुक्त स्थान के चुनाव का भार भी प्रभु श्री लक्ष्मण को ही सौंप देते हैं। लक्ष्मण के स्नेहिल हाथों के द्वारा बनाई गई कुटिया के सन्दर्भ में और लक्ष्मणजी की भूमिका के बारे में गीतावलि में गोस्वामीजी न सुन्दर वर्णन करतं हुए कहा है कि, 'कौन कह सकता है कि यह अनोखा कलाकार रागी है या विरागी। प्रतिक्षण रस और अनुराग के वातावरण की सृष्टि करनेवाला यह विरागी विरोधाभासों का पुंज है। इसीलिए गोस्वामीजी

श्री लक्ष्मण चरित्र

की उपमाएं बदलती रहती हैं। उन्हें कभी लगता है लक्ष्मण काम के सेनापति वसन्तु हैं तो कभी लगता है कि मानो वैराग्य ही मूर्तिमान होकर आ गया है। वे पर्ण-कुटिर में निवास करनेवाले विराग हैं तो स्वर्ग में निवास करने वाले शचीसुत जयन्त भी हैं।

चित्रकुट के आश्रम की सज्जा में सर्वत्र उनका हाथ देखा जा सकता है। तुलसी और पुष्पों के जो बिरवे रोपे गए हैं उनका नित्य सिंचन करना भी उन्हीं का कार्य है। पर इससे भिन्न उनका एक और स्वरूप भी है, जब उनकी मुख-मुद्रा इतनी कठोर हो जाती है कि दृष्टि उठाकर देखना भी असम्भव हो जाता है। अभी

श्री लक्ष्मण चरित्र

समाचार मिला है कि भरत चतुरंगिणी सेना लेकर चित्रकूट के आश्रम की ओर आ रहे हैं। प्रभु के मुख पर चिन्ता के चिह्न परिलक्षित होते हैं। निरन्तर प्रभु की मुखाकृति पर दृअष्ट रखने वाले लक्ष्मण के लिए यह स्थिति असह्य है। क्षण-भर में रोष की लालिमा से उनका मुख तमतमा उठा। इन दिनों ऐसा लगता था कि लक्ष्मण स्वयं भले ही न सोते हों पर उन्होंने अपने अन्तर्मन में स्थित वीररस को तो सुला ही दिया था। इस पावन तपोवन में इस रससिक्त भूमि में वीररस का प्रयोजन भी क्या था? पर चतुरंगिणी सेना के समाचार ने उन्हें क्षण-भर में चैतन्य कर दिया। विनम्र वाणी का प्रयोग करने वाले लक्ष्मण के मुख से सिंह-गर्जना का जो स्वर गूंजा, उससे वन-प्रान्त ही नहीं, त्रैलोक्य भी कम्पित हो उठा। भरत के प्रति सर्वदा समादर भाव रखने वाले लक्ष्मण आज भरत

श्री लक्ष्मण चरित्र

के नाम का स्मरण करते हुए कटु-उक्तियों की वर्षा करने लग जाते हैं। इससे भी आगे बढ़कर वे धनुषबाण से सुसज्जित होकर युद्ध की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं।

लक्ष्मण की यह प्रतिक्रिया आवेशात्मक व उतावलेपन से युक्त प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। किन्तु अन्तरंग में बैठकर विचार करने पर इस प्रसंग में उनका जो रूप प्रकट होता है, वह निन्दनीय नहीं किन्तु अभिनन्दनीय है।

विभूति दर्शन

जीवनमुक्त

– 23 –

उत्तरकाशी

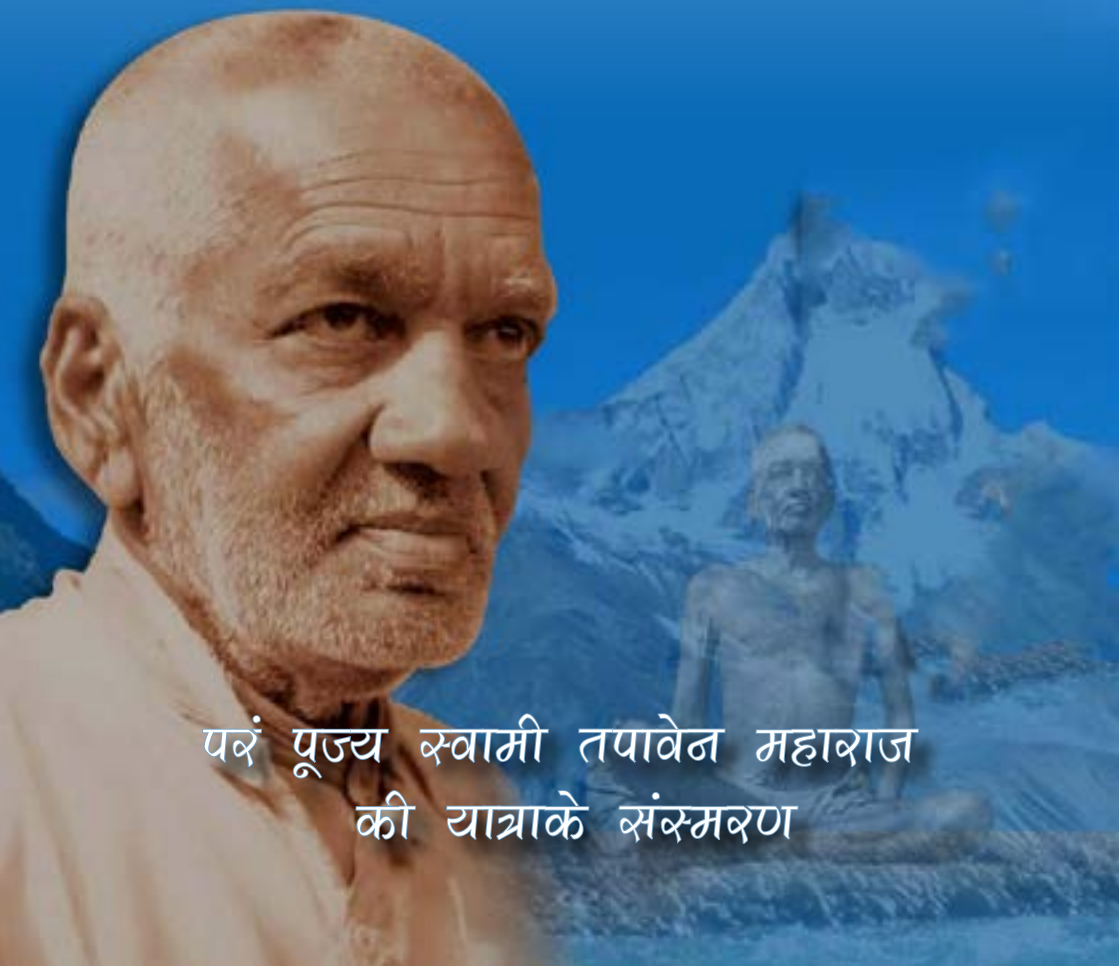

परं पूज्य स्वामी तपोवेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

जिस देश में, जिस देव के सामने, महामाया की मोहन प्रवृत्तियों का प्रवेश नही होता, 'उत्तरकाशी' तथा 'सौम्य काशी' के नाम से मशहूर उस पुण्यक्षेत्र में विश्वनाथ की सन्निधि में मैं पहले पहले सन् १९२४ के अप्रैल महीने में गया था। हिमालय पर्वत मेघ गर्जन का बाजा बजाते और वृष्टि की पुष्प-वर्षा करते हुए अपने घर में आये हुए इस नवागत साधु का स्वागत कर रहा था। साधु महात्मा सब कहीं आदर के पात्र हैं। नगर के बीच में हों, या पहाड की चोटी पर वे समान रूपसे आदर पाते हैं। सन्यासी विष्णुस्वरूप है। पंडाल की तरह फैलकर

जीवन्मुक्त

नीचे लटकी काली घटाएं तथा तोरणों की भांति पहाड़ों की बग़ल में नीचे लटका इन्द्र धनुष इस साधु को अत्यन्त आनंद देता था। हिमगिरि के हृदय में विराजमान उत्तरकाशी की एकान्त रमणीयता और नितान्त पवित्रता ने मेरे अंतरतम को बहुत ही आवर्जित कर दिया था। इस प्रकार साधु और भक्तरूप में हिमालय के द्वारा प्रेमपूर्वक स्वागत किये जाने पर, मैं यद्यपि उस बार अधिक समय तक वहां नहीं रहा, तो भी बाद में कई बार वहां जाकर अधिक दिनों तक ब्रह्मविचार में लीन ईश्वरीय जीवन बिताता रहा। चित्त को सत्त्वगुणी बनाये सदा ईश्वर के ध्यान और उसके शास्त्र विचार में निमग्न होकर अनन्यचित्तता के साथ एक आनन्दमय जीवन बिताने में इतनी अनुकूल तपोभूमियां तुहिनगिरि

जीवन्मुक्त

में सुलभ होती है। हिमगिरि का शिखर! भागीरथी का तट! विश्वनाथपुरी! महात्मा महर्षि पुंगवों की विहारभूमि! बड़ा ही रमणीय निर्जन वनप्रदेश! इनसे बढ़कर तत्त्वनिष्ठा के साथ एक सन्यासी जीवन बिताने में भला और कौन सी अनुकूलता अपेक्षित है?

विश्वेश्वर मंदिर से लगभग दो मील उत्तर की ओर जाने एक पर वहा विशाल तथा सुन्दर धान का खेत दिखायी पड़ता है। वहां से कुछ और उपर जाने पर काशीक्षेत्र की उत्तरी सीमा 'असी' नामक एक छोटी नदी तथा भागीरथी का संगम है। वहां से उत्तरीदिशा में वल्ली गुल्मादियों से निबिड़, वृक्षराजियों से विराजित एवं निर्झराम्बु निषिक्त कमनीय वनों से अलंकृत पर्वतों की ताराइयां भी प्राप्त होती है। जब जब मैं उत्तरकाशी में रहा, तब वहां के खेत और असी किनारे का रमणीय वन चित्तसमाधि के साधन बन जाते थे। उस स्थानों पर बैठकर मैं चिंतन सरणी

जीवन्मुक्त

में बहते हुए अलौकिक शान्ति का अनुभव किया करता था। चूँकि उत्तरकाशी में गंगातट की निम्नभूमि भी लगभग पांच हजार फुट की उंचाई पर है, इसलिए हिमालय के निम्न स्थानों के समान गर्मी में प्रचंड ताप या वर्षा में मलेरिया आदि का अनर्थ यहां नहीं होता। वर्षा में पहाड़ की तराइयों से नीचे की ओर उतरकर बहुत ही निकट चलनेवाले काले बादलों के समूह प्रतिदिन बरसते हुए मन को उन्मेष से भर देते हैं। यहां के जाड़े के बारे में तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करनेवाला है। बरसात शुरू होनेपर हिमपात के कारण धवल बन जानेवाली पर्वत श्रेणियाँ तथा शीत की अधिकता से मनुष्यों का आवागमन ही नहीं, पक्षियों की आवाज़को भी रोकनेवाली गम्भीर प्रशांति कितना आनन्द व आश्चर्य पैदा कर देती हैं।

यस्य प्रसादाद्
अहमेव विष्णुः
मयि एव सर्वं
परिकल्पितं च।

इत्थं विजानामि
सदात्मरूपं
तस्यानिघ्रि पद्मं
प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।

पौराणिक गाथा

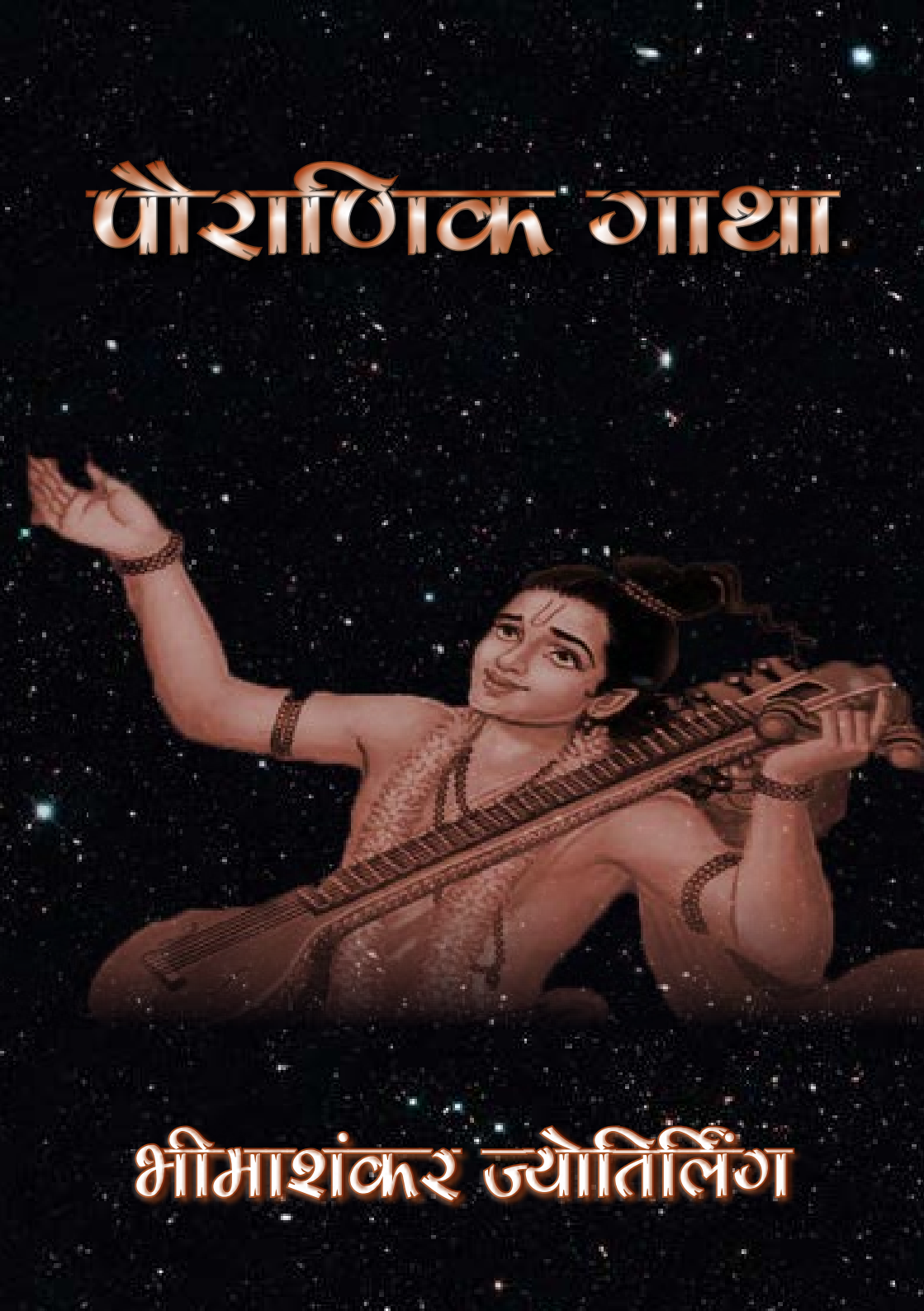

भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग

भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग

भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र के पुणे से लगभग ११० कि.मी. दूरी पर सह्याद्रि पर्वत पर स्थित है। इसके विषय शिवपुराण में एक कथा प्राप्त होती है।

प्राचीन काल में भीम नामक एक राक्षस था। जो कि रावण के भाई कुम्भकर्ण का पुत्र था। लंकाविजय के समय भगवान श्रीराम के द्वारा कुम्भकर्ण का वध किया गया। यह बात भीम को अपनी माता के द्वारा ज्ञात हुई। तब भीम अत्यन्त क्रोधित हो गया और प्रभु श्रीराम का वध करने का निश्चय कर लिया। उसके लिए उसने ब्रह्माजी की कठोर तपस्या के साथ आराधना की। और ब्रह्माजी से विजयी होने का वर प्राप्त कर लिया।

भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग

ब्रह्माजी से वर पाते ही वह अपने आपको सर्वे-सर्वा समझने लगा और चारों ओर आतंक फैलाने लगा। उसने समस्त देवी-देवताओं की पूजा पर प्रतिबन्ध लगाकर अपनी ही पूजा-आराधना करने का सब पर दबाव डालने लगा।

वहीं पर एक कामरूपेश्वर नामक एक शिवभक्त राजा था। उनको भीम ने शिवजी की पूजा-आराधना करते देख लिया। उस पर वह क्रोधित हो गया और उन्हें कारावास में डाल दिया। राजा वहीं कारावास में भी शिविलिंग बनाकर पूजा करने लगे। यह देखकर भीम अत्यन्त क्रोधित हो उठा और शिवलिंग को तोड़ने के लिए उन पर तलवार से प्रहार किया। तब उसमें से भगवान शिव स्वयं प्रकट हुएं। शिवजी से भीम का भीषण युद्ध हुआ और अन्ततः वह मारा गया। तब देवता, ऋषिमुनि आदि सब वहां प्रभु के दर्शन के लिए आएं और उन्हें उस स्थान

भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग

पर सदैव के लिए विराजित होने हेतु निवेदन किया। उसीसे वे उस शिवलिंग में ज्योतिरूप में प्रस्थापित हो गएं। तब से यह भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रचलित हुआ।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

आदि शंकराचार्य जयन्ति

आश्रम समाचार

शंकराचार्य कक्ष पूजन

६ मई २०२२

आश्रम समाचार

Holistic Living Trainee's Camp

आश्रम समाचार

Holistic Living Camp

16-20 May 2022

Vedanta Ashram-Indore

आश्रम समाचार

प्रतिदिन अभिषेक एवं पूजा

आश्रम समाचार

श्री गुरुभ्यो नमः।

आश्रम समाचार

उत्साही शिविरार्थी

आश्रम समाचार

समग्र जीवन पर ध्यान

आश्रम समाचार

Campers giving Presentations

आश्रम समाचार

गुरुदक्षिणा कार्यक्रम

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

समग्र जीवन का आरम्भ

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

अनघ एवं भरत के जन्मदिन पर पूजा

२० मई २०२२

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

शिविर से समावर्तन

आश्रम समाचार

हर्ष द्वारा जन्मदिन पर पूजा

आश्रम समाचार

पूज्य गुरुजी से आशीर्वाद

आश्रम समाचार

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

८ से १३ जुलाई २०२२

वेदान्त शिविर

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी द्वारा

१३ जुलाई

गुरुपूर्णिमा उत्सव

प्रेरक कहानियां एवं अन्य प्रकाशन

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

आत्मबोध (ऑनलाईन)

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

पूज्य गुरुजी के द्वारा

INTERNET NEWS

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on You Tube Channel

- ~ Upadesh Saar
- ~ Atma Bodha Pravachan
- ~ Sundar Kand Pravachan
- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Ekshloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Hanuman Chalisa

Internet News

Audio Pravachans

~ Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh ~ June '22

Vedanta Piyush ~ Mayr'22

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Published by:
Vedanta Ashram, Indore

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati